2 गणित की प्रकृति और स्कूली शिक्षा से उसका सम्बन्ध

अमिताभ मुखर्जी



पृष्ठभूमि

सभी स्कूली विषयों में गणित ऐसा है जिसका दर्जा अनोखा –पर अन्तर्विरोधी – है। एक तरफ, इसे स्कूली शिक्षा का एक अत्यावश्यक अंश माना जाता है। कक्षा 1 से ही शुरू करके कक्षा 10 तक इसे अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। इसे अक्सर एक प्रकार की कसौटी माना जाता है जिसके अनुसार : वही व्यक्ति शिक्षित है जिसे गणित आता हो। दूसरी तरफ, यह स्कूली विषयों में सबसे डरावना भी माना जाता है, और इसकी वजह से विद्यार्थियों में भय और असफलता का भाव व्याप्त रहता है। उन वयस्क लोगों को भी, जिन्होंने स्कूली दौर सफलतापूर्वक पार कर लिया है, यह कहते हुए सुना जा सकता है: ''मैं स्कूल में कभी भी गणित ठीक से नहीं समझ पाया।'' (जब हममें से कुछ लोगों ने 1992 में दिल्ली विश्वविद्यालय के विज्ञान शिक्षा और संचार केन्द्र में स्कूल मैथेमैटिक्स प्रॉजेक्ट शुरू किया तो हमारा मकसद इस भय का इलाज करना था। हालिया स्थिति के लिए आप गणित शिक्षण पर गठित नेशनल फोकस ग्रुप के पोज़ीशन पेपर को इस यूआरएल पर पढ़ सकते हैं http://www.ncert.nic.in/html/pdf/schoolcurriculum/position_papers/Math.pdf)

ऊपर वर्णित विरोधाभास कई सवाल पैदा करता है। इनमें से कुछ हैं, गणित क्या है और हमें इसे स्कूल में क्यों पढ़ाना चाहिए? क्या स्कूली गणित के साथ आने वाली समस्या का सम्बन्ध गणित की प्रकृति से, या उसे पढाए जाने के ढंग से है, या फिर दोनों ही बातों से उसका कुछ लेना–देना है? क्या सभी बच्चे किसी खास स्तर तक गणित पढ़ सकते हैं? स्कूल में हमें किस तरह का गणित पढ़ाना चाहिए? और कैसे पढ़ाना चाहिए?

ऊपर के सभी सवालों के जवाब देने का प्रयास करना महत्वाकांक्षी बात हो सकती है, शायद दुःसाहसी भी। इस लेख में मैं स्कूली गणित के बारे में पिछले पाँच दशकों में आए कुछ बदलावों पर, तथा पिछले कुछ सालों में भारत में दिखे उनके प्रभावों पर ध्यान दूँगा।

सभी के लिए गणित

स्कूली गणित के बारे में किसी भी समकालीन चर्चा में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण (यूईई) के सन्दर्भ को ध्यान में रखना जरूरी है। आज, यूईई किसी दूर के सपने की बजाय एक हासिल किया जा सकनेवाला लक्ष्य प्रतीत होता है। मील का अगला पत्थर सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा (यूएसई) भी निश्चित ही आने वाले दशक में शैक्षणिक कार्यसूची का प्रमुख हिस्सा बनेगा। अतः जब हम स्कूली गणित की बात करते हैं तो हम ऐसी चीज की बात कर रहे होते हैं जो सभी स्कूली बच्चों के प्रति सम्बोधित है।

क्या सभी लोग गणित सीख सकते हैं? पचास साल पहले इसका उत्तर स्पष्ट रूप से 'नहीं' रहा होता। आज भी, हम वयस्क लोगों को कुछ बच्चों के बारे में यह कहते सुन सकते हैं कि वे 'कभी भी गणित नहीं सीख सकेंगे'। यूईई/यूएसई की अपेक्षाएँ किस तरह से इसका उत्तर देती हैं, इस बाबत, ऊपर वर्णित पोजीशन पेपर अपना स्पष्ट मत देता है जिसमें कहा गया है:

> *''उत्कृष्ट गणितीय शिक्षा का हमारा दृष्टिकोण दो मान्यताओं पर आधारित है कि **सभी बच्चे गणित सीख सकते हैं और सभी बच्चों को गणित सीखना चाहिए।** इसलिए यह अत्यावश्यक है कि हम सभी बच्चों को सबसे अच्छे स्तर की गणितीय शिक्षा प्रदान **करें**।''*

इसके बाद प्रश्न यह उठता है कि किस तरह की गणितीय शिक्षा सभी बच्चों की जरूरतों को पूरा करेगी? इस बात का उत्तर देने के लिए हमें गणित की शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में कुछ स्पष्टता हासिल करना जरूरी है।

> *''यह जानते हुए कि सभी बच्चे आठवीं कक्षा तक (और शायद दसवीं तक भी) गणित पढ़ने वाले हैं, स्कूली गणित शिक्षण का मुख्य उद्देश्य गणितज्ञ पैदा करना नहीं हो सकता।''*

स्कूल की गणितीय शिक्षा का उद्देश्य

यह जानते हुए कि सभी बच्चे आठवीं कक्षा तक (और शायद दसवीं तक भी) गणित पढ़ने वाले हैं, स्कूली गणित शिक्षण का मुख्य उद्देश्य गणितज्ञ पैदा करना नहीं हो सकता। और इसी तरह यह वैज्ञानिक या इंजीनियर पैदा करने में भी मददगार नहीं हो

सकता, हालाँकि इन क्षेत्रों के सन्दर्भ में गणित का बहुत महत्वपूर्ण और खास स्थान है। फिर स्कूली गणितीय शिक्षा का उद्देश्य क्या है? पोजीशन पेपर कहता है:

> *सीधे कहें तो, एक ही मुख्य लक्ष्य है– बच्चे की विचार प्रक्रियाओं का गणितीकरण।*

दूसरे शब्दों में, लक्ष्य है दुनिया के बारे में गणित की भाषा में सोचना सीखना, और इस तरह की सोच विकसित करना जो कि ठेठ गणितीय हो। दूसरी तरफ, पिछले पाँच दशकों से देश में चल रहे पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों को देखने पर कुछ अलग ही बात सामने आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'विश्वविद्यालयीन शिक्षा' या शायद 'आईआईटी शिक्षा' का स्कूली गणित की विषयवस्तु और शैली पर प्रभुत्व रहा है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि अतीत में स्कूल गए और वर्तमान में स्कूल जा रहे अधिकांश विद्यार्थियों के मन में इस विषय के लिए कोई प्यार नहीं है!

गणित आखिर है क्या?

यदि गणित शिक्षा का मुख्य लक्ष्य सोच का गणितीयकरण करना है, तो हमारी इस बात पर थोड़ी सहमति होना जरूरी है कि आखिर गणित किस–किस चीज से निर्मित होता है। यदि आप किसी आम व्यक्ति से यह सवाल पूछें कि ''गणित क्या है?'' तो ज्यादा सम्भावना है कि आपको त्वरित जवाब मिलेंगे ''जोड़ना, घटाना, गुणन, भाग देना''। (और सोचने पर या पूछे जाने पर लोग इसमें आमतौर पर बीजगणित और ज्यामिति (रेखागणित) और जोड़ देते हैं।) अंकों पर की जाने वाली ये क्रियाएँ निश्चित ही गणित का एक अहम हिस्सा होती हैं, पर सिर्फ इन्हीं से गणित को या गणितीय सोच को परिभाषित नहीं किया जा सकता। मैं कोई परिभाषा देने का प्रयास नहीं करूँगा बल्कि, मैं आपको गणितीय सोच के कुछ उदाहरण दूँगा–

''दरवाजा, मेरे और दीवार के बीच में है।''
''जार में करीब पचास टॉफियाँ हैं।''
''यह गिलास लम्बा लेकिन सँकरा है। इसमें चौड़े मग की अपेक्षा कम पानी आएगा।''
''उन्नीस और पन्द्रह होता है... बीस और पन्द्रह से एक कम... यानी चौंतीस।''
''यदि आप सड़क से जाते हैं तो आपको स्टेशन पहुँचने में करीब पन्द्रह मिनिट लगेंगे, पर एक शॉर्टकट भी है जिससे आप दस मिनिट में पहुँच जाएँगे।''

पहली बार देखने पर ऐसा लगेगा कि पहले वक्तव्य में गणितीय सोच का कोई प्रमाण नहीं दिखता। पर स्कूल–पूर्व उम्र के बच्चे के लिए स्थानिक सम्बन्ध जैसे 'से ऊपर', 'से नीचे', 'के बीच में', 'के परे' गणितीकरण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं।

सोच का गणितीकरण कोई पूर्ण या एक बार घटने वाली घटना नहीं है। स्कूली जीवन के दौरान और उसके बाद भी, बच्चों तथा वयस्कों का भी, गणितीयकरण होता रहता है। दूसरी तरफ, हमारे पाठ्यक्रमों में ऐसी कई बातें हो सकती हैं जो विद्यार्थी बिना किन्हीं संलग्न प्रक्रियाओं के सीख जाते हैं, और इसलिए वे गणित की 'असली पढ़ाई' में कोई योगदान नहीं दे पातीं। यहाँ ऐसी कुछ बातों के उदाहरण हैं, जिन्हें यदि उचित कक्षा प्रक्रियाओं का सहारा न मिले तो अन्ततः वे सब रट ली जाती हैं।

> ''किसी भी चीज़ को m/n से भाग देने के लिए आपको उसे m/n से गुणा करना पड़ता है।''
> ''a और b का लघुत्तम समापवर्त्य का मूल्य, b को a बार गुणा करने पर आने वाली संख्या को और a और b के महत्तम समापवर्तक से भाग देने पर आने वाली संख्या के बराबर होता है।''
> ''समान तल और ऊँचाई वाले सभी त्रिभुजों का क्षेत्रफल समान होता है।''

अमूर्तीकरण की समस्या

छोटे बच्चे चीज़ों से खेलते हुए दुनिया के बारे में सीखते हैं। इसलिए गणित से भी उनका परिचय इसी तरीके से होता है। लेकिन गणित के साथ तो पहली कक्षा में भी अमूर्तीकरण मौजूद रहता है। स्कूली गणित के सबसे निचले स्तर से लिए गए इस वाक्य पर गौर करें:

> ''दो और दो मिलकर चार बनाते हैं।''

यह वक्तव्य दो और चार के बारे में है, जो अमूर्त तत्व हैं। साइकिल के पहियों, मोज़ों और दो सेबों में कोई चीज़ समान है: एक गुणधर्म जिसे हम 'दो–पन' कह सकते हैं। ''दो सेब और दो अन्य सेब मिलकर चार सेब बनाते हैं'', यह भौतिक दुनिया के बारे में एक वक्तव्य है, जिसका ऊपर दिए गए अमूर्त वक्तव्य के विपरीत वास्तव में परीक्षण किया जा सकता है।

मार्टिन ह्यूज़ की 1986 में आई किताब ''चिल्ड्रन ऐंड नम्बर'' में बच्चों के साथ किए गए कई वार्तालाप दर्ज हैं, जो दिखाते हैं कि बच्चों के पास स्कूल जाना शुरू करने से पहले भी ''संख्या के बारे में आश्चर्यजनक रूप से अच्छा–खासा ज्ञान होता है''। परन्तु यह ज्ञान गणित की कक्षा की औपचारिक भाषा में व्यक्त नहीं होता। हो सकता है कि एक बच्चा किसी बॉक्स में रखी ईंटों की संख्या की सही–सही गणना कर दे, और बता दे कि यदि उसमें आठ ईंटें हैं तो दो और जोड़ने से कुल दस ईंटें हो जाएँगी। पर इसी बच्चे से यह अमूर्त सवाल पूछे जाने पर उसे कुछ नहीं सूझेगा कि ''आठ और दो कितने होते हैं? ''

इस तरह के प्रयोग कई अन्य लोगों द्वारा बाद में भी किए गए हैं और उनके परिणाम भी इसी तरह के निकले हैं। कक्षाओं के लिए इनका निहितार्थ यह है कि ठोस वस्तुओं के साथ की जाने वाली गतिविधियाँ, गणितीय विषयवस्तु को व्यक्त करने के लिए आमतौर पर इस्तेमाल होने वाली औपचारिक, अमूर्त भाषा के प्रयोग से पहले की जानी चाहिए। इसके अलावा, अनौपचारिक से औपचारिक की ओर होने वाले बदलाव पर हमारी कक्षायी गतिविधियों में विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

गणितीय ज्ञान की रचना

चूँकि गणित के बुनियादी तत्व अमूर्त हैं, अतः हमें यह सोचना पड़ सकता है कि क्या उनका अस्तित्व वस्तुपरक और मानव मस्तिष्क से स्वतंत्र है, या फिर वे दिमाग की ही उपज हैं। यह एक ऐसा मुद्दा है जिस पर दार्शनिक कम से कम दार्शनिक–गणितज्ञ रेने डेस्कार्टस (1596–1650) के समय से बहस करते आ रहे हैं। उदाहरण के लिए, क्या संख्याएँ वाकई में 'कहीं हैं' या वे सिर्फ हमारे दिमागों में ही होती हैं? इस विषय की अलग–अलग स्थितियों का सार बर्ट्रैंड रसेल ने अपनी बेहद पठनीय छोटी–सी किताब ''इन्ट्रोडक्शन टू मैथेमैटिकल फिलॉसोफी'' में प्रस्तुत किया है। यहाँ मैं जरा देर के लिए इस चर्चा से हटकर इस मुद्दे के थोड़े से भिन्न पहलू पर ध्यान आकर्षित करूँगा, एक ऐसा मुद्दा जो कक्षा से सीधे जुड़ा हुआ है।

पियाजे, वायगॉट्स्की व अन्य लोगों के कार्य के बाद यह बात अब सामान्यतः स्वीकृत है, कि बच्चे निष्क्रिय रूप से ज्ञान अर्जित नहीं करते। इसके बजाय, प्रत्येक विद्यार्थी सक्रिय रूप से अपने लिए ज्ञान निर्मित करता है। ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में बाहरी दुनिया के साथ–साथ दूसरे लोगों के साथ मेल–मिलाप और व्यवहार शामिल रहता है। अतः इससे कोई मतलब नहीं कि गणितीय तत्वों का कोई वस्तुपरक अस्तित्व होता है या नहीं: हम सभी को उन्हें खुद के लिए निर्मित करने की प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है।

हालाँकि पियाजे को स्कूली गणित की ज्यादा परवाह नहीं थी फिर भी उनका कार्य सीधे तौर पर शुरुआती दौर की गणित की पढ़ाई को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, कॉन्सटैंस कामी ने यह तर्क दिया है कि छोटे बच्चे अंकगणित को खोजते नहीं हैं बल्कि उसका पुनर्आविष्कार करते हैं। पहली बार देखने पर यह बात इस दावे के विपरीत लगेगी कि स्कूल–पूर्व की उम्र वाले बच्चों को गणित का या कम से कम संख्याओं का अच्छा–खासा ज्ञान होता है। लेकिन, इसमें कोई विरोधाभास नहीं है यदि हम इस बात पर गौर करें कि बच्चे स्कूल में दाखिल होने से पूर्व ही कई तरह के गणितीय सन्दर्भों से रूबरू हो चुके होते हैं।

क्या गणितीय ज्ञान अनोखा होता है?

इससे पहले कि हम कक्षाओं के लिए इन विचारों के तात्पर्यों की तरफ मुड़ें, हमें इस मुद्दे को तो सुलझाना ही होगा कि कौन–सा गणित पढ़ाया जाए। क्या हमारे पाठ्यक्रम के विकल्प केवल गणितीय ज्ञान के ढाँचे से ही तय होना चाहिए? यदि हाँ, तो क्या यह ढाँचा अनोखा और सार्वभौमिक है? यदि यह सवाल किसी व्यावसायिक गणितज्ञ के सामने रखा जाए तो सम्भावित उत्तर एक सुस्पष्ट 'हां' होगा। लेकिन, हमें यह जरूर याद रखना चाहिए कि गणितीय शोध समुदाय के सदस्य एक स्वपरिभाषित सीमित सामाजिक समूह हैं। जैसा कि पहले भी तर्क दिया गया है, स्कूली गणित शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के लिए इस सम्भ्रांत समूह की सदस्यता हासिल करना नहीं हो सकता।

भारत समेत कई देशों के शोधकर्ताओं ने गणित की कई भिन्न परम्पराओं का ब्यौरा दिया है। इनमें से कुछ तो आदिवासी और अन्य पृथक समुदायों में पाई जाती हैं, जबकि 'सड़कछाप गणित' कही जाने वाली कुछ अन्य, स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले औपचारिक गणित के साथ ही देखी जा सकती हैं। मिस्त्रियों, नलसाज़ों और अन्य कारीगरों को अक्सर उनके व्यवसाय से जुड़े हुए गणित के उनके खुद के रूपों का इस्तेमाल करते देखा जा सकता है।

गहरे स्तर पर, किसी भी जगह या समय पर गणितज्ञों के समुदाय को कार्यरत रखने वाले गणित का प्रकार उन अन्य सामाजिक समूहों द्वारा तय होता है जिनसे कि उन गणितज्ञों का सम्बन्ध होता है। जाति, भाषा, राष्ट्रीयता और धर्म के प्रभावों को दरकिनार नहीं किया जा सकता, भले ही गणितज्ञ यह मानना पसन्द करें कि वे इस तरह के प्रभावों के ऊपर और इनके परे हैं। यूक्लिड से लेकर न्यूटन से होते हुए वर्तमान समय तक रेखीय रूप से, मुख्यतः पश्चिम में, विकसित हुए गणित की तस्वीर को मिलनेवाली चुनौतियाँ आज बढ़ती ही जा रही हैं।

गणित के शिक्षण के लिए निहितार्थ

ऊपर दिए गए विचार स्वाभाविक रूप से इस बाबत कुछ निष्कर्षों की ओर ले जाते हैं कि गणित कैसे पढ़ाया जाना चाहिए। चूँकि इस अंक में गणित की अध्यापनकला पर एक लेख अलग से है अतः मैं अपनी बात संक्षेप में कहूँगा–

1. बच्चों को ऐसे सन्दर्भ दिए जाना चाहिए जिनमें गणित का सीखना सम्भव हो सके। ये सन्दर्भ 'वास्तविक जैसे' होना चाहिए, भले ही वे वास्तविक न हों।
2. शुरुआती कक्षाओं में बच्चों को ठोस वस्तुओं से खेलते हुए सीखने के पर्याप्त मौके दिए जाना चाहिए।

3. औपचारिक, प्रतीकात्मक रूप की ओर होने वाले बदलाव के प्रति खास ध्यान दिया जाना चाहिए। शुरुआती दौर में सवालों को हल करने की विधियों को नहीं सिखाया जाना चाहिए।
4. बुनियादी कौशलों को सीखना जरूरी है, पर गणितीय ढंग से सोचना और भी ज्यादा महत्वपूर्ण है।
5. विद्यार्थियों को किसी भी तरह से यह आभास नहीं कराना चाहिए कि गणितीय ज्ञान एक तैयार उत्पाद है।
6. कुल मिलाकर, शिक्षक को एक सहायक की भूमिका अदा करना चाहिए, और हरेक बच्चा सक्रिय रूप से गणित सीखने की प्रक्रिया में संलग्न होना चाहिए।

निष्कर्ष

यह प्रतीत हो सकता है कि गणित की प्रकृति से जुड़े हुए मुद्दे दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में आते हैं, और उनका छोटी कक्षाओं में गणित को पढाए जाने के तरीके से कोई ज्यादा सम्बन्ध नहीं है। लेकिन, जैसा कि पहले भी तर्क दिया गया है, इसमें एक गहरा सम्बन्ध है। इसलिए, स्कूली गणित से जुड़े हुए लोगों – शिक्षकों, स्कूल प्रशासकों, शिक्षक–प्रशिक्षकों – के लिए यह जरूरी है कि वे यहाँ उठाए गए मुद्दों के बारे में किसी न किसी स्तर पर कुछ न कुछ जरूर करें। इसे सबसे अच्छे ढंग से कैसे किया जा सकता है, यह एक खुला प्रश्न है।

अमिताभ मुखर्जी *दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक हैं। वे विज्ञान शिक्षा व संचार केन्द्र (सीएसईसी) के निदेशक (2003–2009 तक) रहे हैं। वे होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के साथ निकट से जुड़े रहे हैं। गणित शिक्षा के साथ उनका जुड़ाव 1992 से सीएसईसी के स्कूल गणित प्रॉजेक्ट के साथ शुरू हुआ। वे 2005 में गणित शिक्षण पर गठित नेशनल फोकस ग्रुप के सदस्य भी थे। उनसे* amimukh@gmail.com *पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

दिमागी कसरत

एक खेल में 10 बुद्धिमान लोग भाग ले रहे हैं। सभी दस खिलाड़ियों को एक के पीछे एक, ऐसी सीधी रेखा में खड़ा किया गया है कि सबसे अन्त में खड़ा व्यक्ति अपने आगे खड़े 9 लोगों को देख सकता है, नौंवा व्यक्ति उसके आगे खड़े सभी 8 लोगों को देख सकता है, उसके आगे वाला अपने आगे के सभी लोगों को और सबसे पहले खड़ा व्यक्ति किसी को भी नहीं देख सकता। रेखा में खड़े 10 लोगों का क्रम गेममास्टर (खेल का नियंता) द्वारा निर्धारित किया जाता है। वहाँ पर्याप्त संख्या में काले रंग की और सफेद रंग की टोपियाँ मौजूद हैं। गेममास्टर उनमें से प्रत्येक व्यक्ति के सिर पर एक–एक टोपी रख देगा। इसके बाद वह अन्तिम व्यक्ति (जो अन्य सभी को देख सकता है) से शुरू करते हुए प्रत्येक से अपने–अपने सिर पर रखी टोपी का रंग बताने को कहेगा। जवाब में खिलाड़ी या तो काली कह सकता है या सफेद, इनके अलावा और कोई अन्य जवाब नहीं दे सकता। सही जवाब देने वाले खिलाड़ी/खिलाड़ियों को पुरस्कृत किया जाएगा। सभी लोग दूसरों के जवाब सुन सकते हैं। खिलाड़ियों को खेल में शामिल होने से पहले अपनी रणनीति की योजना बनाने और आपस में चर्चा करने के लिए कुछ समय दिया जाता है (जवाब देते समय स्वर में बदलाव करना या फिर ज्यादा ऊँचा बोलना जैसी चालाकियाँ करने की अनुमति नहीं होती)। वे कौन–सी रणनीति अपनाएँ कि ज्यादा से ज्यादा लोगों को पुरस्कार मिल सके? और इस रणनीति के साथ कितने लोग निश्चित रूप से पुरस्कार जीतने के प्रति आशावान हो सकते हैं?

(संकेतः यदि 10 की बजाय 11 व्यक्ति हों तो उत्तर बदल सकता है।)

नीचे दिए स्थान को गणना के लिए उपयोग करें 🙂